ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा

तिथि–10 सितम्बर 2020
सृष्टि संवत्- १, ९६, ०८, ५३, १२१
युगाब्द-५१२१, अंक-१३०, वर्ष-१३
आश्विन विक्रमी २०७७ (सितम्बर 2020)
मुख्य संपादक : हनुमत्प्रसाद 'अथर्ववेदाचार्य'
कार्यकारी संपादक : आचार्य सतीश
सम्पर्क सूत्र: 9350945482
Web: www.aryanirmatrisabha.com
E-mail : krinvantovishwaryam@gmail.com

ऋषि दयानन्द

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

(राष्ट्रीय आर्यनिर्मात्री सभा का मासिक विचार पत्र)

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते। यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ –ऋ० १। ८। ५। २

व्याख्यान–हे दुष्टों को रुलानेहारे [(रुद्र)] ईश्वर ! हमको (मृड) सुखी कर। तथा (मयस्कृधि) हमको 'मय' अर्थात् अत्यन्त सुख का सम्पादन कर। (क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते) शत्रुओं के वीरों का क्षय करनेवाले आपको अत्यन्त नमस्कारादि से परिचर्या करनेवाले आपको अत्यन्त नमस्कारादि से परिचर्या करनेवाले हम लोगों का रक्षण यथावत् कर। (यच्छम्) हे रुद्र ! आप हमारे पिता (जनक) और पालक हो, हमारी सब प्रजा को सुखी कर। (योश्च) और प्रजा के रोगों का भी नाश कर। जैसे (मनुः) मान्यकारक पिता (आयेजे) स्वप्रजा को संगत और अनेकविध लाड़न करता है, वैसे आप हमारा पालन करो। हे रुद्र भगवन्! (तव प्रणीतिषु) आपकी आज्ञा का प्रणय अर्थात् उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होके (तदश्याम) वीरों के चक्रवर्ती राज्य को आपके अनुग्रह से प्राप्त हों ।।४५।।

सम्पादकीय

पुनः- जय आर्य–जय आर्यावर्त्त

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा की स्थापना 2004 ई0 में हुई थी, प्रारम्भ में न्यून ही सत्र लग पाते थे, एक ही मार्गदर्शक आचार्य थे और उनके साथ दो-तीन सहयोगीगण। तप, त्याग और राष्ट्र को आर्यावर्त्त बनाने का लक्ष्य लिए तिनका-तिनका जोड़कर संगठन खड़ा होने लगा, आर्य से आचार्य बनने-बनाने का उपक्रम सरल नहीं था, तथापि 5-6 लोग आचार्यत्व का वरण करने को उद्यत हुए और बन गए। 2004 से 2007 में नवीन आचार्यगणों ने सत्र विद्या का प्रचार-प्रसार प्रारम्भ किया अर्थात् तीन वर्ष तक गहन अध्ययन-प्रशिक्षण के उपरान्त। तब प्रति सप्ताह दो-दो, तीन-तीन सत्र लगने प्रारम्भ हुए जिससे प्रारम्भिक आर्यों में उत्साह का संचार होने लगा। आगे चलकर आचार्यगण बढ़ते गए और सत्र संख्या भी बढ़ती गयी। ऐसा भी अनेक बार हुआ जब घर, परिवार एवं आजीविका को सम्हालते हुए भी हमारे 20 आचार्यगणों में से दश-दश, बारह-बारह आचार्यगणों ने दश-दश, बारह-बारह सत्र एक सप्ताह में सम्पन्न किये। वर्ष में सर्वाधिक सत्रों की संख्या जून मास के नाम रही और रहती है, जब हमारे आर्यगण तपती ग्रीष्मऋतु में तपपूर्वक चालीस-चालीस सत्र तक सम्पन्न करवाते रहे हैं। प्रारम्भिक परिस्थितियों में यह आर्यविद्या सत्र तीन प्रान्तों हरियाण, उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली तक कुछ सीमित स्थानों तक सीमित थे, जिससे तत्-तत् स्थानीय लोगों को लगता था कि- आर्यावर्त्त तो शीघ्र ही चार-छः वर्ष के भीतर ही बन जाएगा, किन्तु जैसे-जैसे कार्य विस्तार इन प्रान्तों के दूरस्थ क्षेत्रों, अन्य राज्यों जैसे- राजस्थान, उत्तराखण्ड, गुजरात, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, बंगाल, गुजरात, आदि प्रान्तों में विस्तार पाने लगा तब हमारे आचार्यगण, प्रचारकजन एवं संसाधन स्वाभाविक रूप से न्यून दिखने लगे, कुछ लोग जो आर्यावर्त्त के समीप ही पहुंच चुके थे, वे निराश ही हो गए, कुछ कार्य की कठिनाई से विचलित हो गए, तो कुछ आजीविका आदि के प्राप्त करने और प्राप्त होने पर उसी में मग्न हो गए। पुनरपि सहस्रों लोग ऐसे भी रहे हैं जो यथावत् पुरुषार्थ में संलग्न यथार्थ को जानते हैं कि यह महनीय पवित्रतम आर्ष कार्य कितना तप, त्याग, श्रम और समय साध्य है, ऐसे

शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... कार्यकत्ताओं की भले ही गति मन्द हो किन्तु प्रत्येक पग (कदम) मजबूत है, अडिग है और अविश्रान्त भी। जिसके फलस्वरूप आज हम सभी आर्य निर्मात्री सभा से आगे बढ़कर 'आर्य महासंघ' का प्रणनयन कर उसके चारों और आर्य निमात्री सभा, आर्य संरक्षिणी सभा सहित और भी प्रकल्प संचालित कर रहे हैं। तथापि सारी परिस्थितियाँ मानव के अधीन नहीं होती, अपनी सारी सामर्थ्य लगाने पर भी मानव घर में ही कैदी का जीवन व्यतीत करेगा, क्या कभी किसी ने सोचा था? किन्तु चीन नास्तिक कम्युनिस्टों की षड्यन्त्रकारी रीति-नीति से यह सब कुछ हुआ और सारे विश्व में हुआ। लाखों लोग काल कलवित हुए, अभी भी हो ही रहे हैं। हमारे देश भी लाखों लोग रोग ग्रस्त हुए और सहस्रों देहावसान को प्राप्त कर चुके हैं। ऐसी भीषण परिस्थिति में हमारा सर्वश्रेष्ठ ''आर्य निर्माण'' का महाअभियान भी बाधित रहा, जिससे हुई हानि का अनुमान हम सहज ही लगा सकते हैं। पुनरपि अब हमारे देश की केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों ने अपने निर्देश में धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यों के लिए सौ व्यक्तियों तक एकत्रीकरण की छूट दी है, जिससे अब पुनः हम सभी सत्रों के आयोजन की ओर प्रवृत्त हों, अपना तन-मन-धन लगाकर इस परमपुनीत पुण्यकार्य में अपने, अपने परिवार, अपने समाज एवं अपने गौरवशाली राष्ट्र के व्यवस्थितिकरण के लिए पूर्ण पुरुषार्थ करना प्रारम्भ करें। अनेक स्थलों पर अनेक पुरुषार्थशील आर्यगण इस महनीय कार्य को प्रारम्भ कर चुके हैं, दूरस्थ प्रान्तों से भी लोग आह्वान् कर ही रहे हैं, आचार्यगण भी पुनः सन्नद्ध हो चुके हैं, और आचार्या भी आर्या निर्माण के लिए कृत संकल्पित हैं, अतः आइए! लग जाइए! और फिर से चतुर्दिक् में गुंजाइए उद्घोष- जय आर्य-जय आर्यावर्त्त ।।

आर्य निर्माणशाला में विभिन्न स्थानों पर निर्मात्री सभा के आचार्यों द्वारा आर्य व आर्या निर्माण

द्विदिवसीय आर्य/आर्या प्रशिक्षण के बाद सत्रार्थियों के अनुभव

मैंने यह आर्य सत्र करने से पहले अपने निज जीवन में अनेक भाँतियाँ पैदा की हुई थी, कुछ अनसुलझे पहलू बार-बार जीवन और बुद्धि में विषम अवस्थाएँ पैदा करते थे लेकिन इस सत्र में उपस्थित होने के बाद वे विषय तो साफ अवस्था में चित में संग्रहित हुए, साथ में आगे के जीवन के बारे में भी मार्ग प्रशस्त हुआ। मेरे और मेरे देश के अतीत और वर्तमान की अनेक अवस्थाएँ, जिनसे चाहे और अनचाहे में मुझसे मुंह फेर लिया जाता था, लेकिन आज उन बुरी अवस्थाओं के बारे में जानकर अब मन और बुद्धि बहुत व्याकुल हो उठी और उनसे बाहर आने के लिए एक अलग तड़प पैदा हुई। अब मन कर रहा है कि मैं तो स्वयं बदलूँ साथ में मेरे रिश्तेदार और विशेषतः मेरी भार्या और मेरी सन्तानों को लेकर आने का पूरा प्रयास करूँ। जय आर्य, जय आर्यावर्त।

अब तक मैंने कोई सहयोग नहीं किया है, लेकिन आगे जरूर सम्भवतः और मेरे अवस्था अनुरूप सहयोग अवश्य करूँगा।

नाम : मनीष कुमार, आयु : 31 वर्ष, योग्यता : आयुर्वेदाचार्य, डी.फार्मा, कार्य : डॉक्टर, पता : चरखी दादरी, हरियाणा।

सत्र में हमारे स्वार्णिम इतिहास के बारें में विस्तार से ज्ञान मिला। वर्तमान की सोचनीय स्थिति से अगवत हुआ। वर्तमान स्थिति में हमारे क्या कर्तव्य हैं इनका परिज्ञान हुआ तथा कर्तव्यों के निर्वघ्न के लिए प्रेरणा मिली। आशा बनी है अभी भी बहुत कुछ किया जा सकता है।

नाम : विजय सिंह, आयु : 62 वर्ष, योग्यता : शास्त्री, कार्य : समाज सेवा, पता : चरखी दादरी, हरियाणा।

वर्ण व्यवस्थाः डॉ. अम्बेडकर बनाम वैदिक मत-३

-सोनू आर्य, हरसौला

महाभारत काल के बाद की व्यवस्था- यह सत्य कथन है कि व्यवस्था चाहे कितनी भी श्रेष्ठ क्यों न बनाई जाए, समयान्तराल पश्चात् उसके सिद्धान्त व व्यवहार में अन्तर आ ही जाता है। महाभारत पूर्व की विशुद्ध वर्ण व्यवस्था में भी महाभारत काल के बाद अप्रत्याशित परिवर्तन हुआ। जो कई कारणों का परिणाम था जिनकी चर्चा आगे करेंगे। डॉ. आम्बेडकर ने वैदिक वांग्मय के अंग्रेजी माध्यम के स्वाध्याय से काफी हद तक वर्ण व्यवस्था के विशुद्ध स्वरूप को जानने का प्रयत्न किया जो उपरोक्त विवरण से स्पष्ट भी है, किन्तु व्यावहारिक जीवन में जाति आधरित दंश जो उन्होंने झेला उसके परिणामस्वरूप उनके द्वारा स्वव्यवस्था पर कुछ आपत्तियाँ करना भी उचित था। अतः डॉ. आम्बेडकर ने वर्ण व्यवस्था सम्बंधी जो आपत्तियाँ की उन पर विचार करते हैं। अपनी **'शूद्र कौन?'** पेज 118 पर डॉ. आम्बेडकर लिखते हैं कि प्रायः प्रत्येक समाज प्रारम्भ में एक होता है और कालान्तर में अनेक भागों में विभक्त हो जाता है। अतः यह मान लेना कि आर्यों ने प्रारम्भ से ही जातिगत आधार पर शूद्रों को उपनयन से वंचित कर दिया था, प्राकृतिक नियमों के प्रतिकूल होगा। यह तर्क संगत हो सकता है किन्तु इस सम्बद्ध में परिस्थितिजन्य तथा स्पष्ट प्रमाण सुलभ है कि शूद्र और स्त्रियों को भी यज्ञोपवीत धारण करने के अधिकार थे। इसी पुस्तक के अगले पृष्ठ पर भी डॉ. आम्बेडकर ने यही माना है कि आर्यों में स्त्री व शूद्रों को उपनयन का अधिकार था। यह विश्वास कर लेना कठिन है कि आर्यों ने प्रारम्भ से ही स्त्री व शूद्रों को उपनयन से वंचित कर रखा था।

उसी पुस्तक के पेज 34 पर 'वेद में यह भी प्रावधान है कि शूद्र उपनयन का अधिकारी नहीं है।' मनुस्मृति का मत इस प्रकार है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि द्विज है जबकि शूद्र का केवल एक ही जन्म होता है।

प्रथमः- इसी पुस्तक के पेज 120 पर उपनयन होने के कारणों का वर्णन इस प्रकार किया है- 'पहले स्त्रियों का उपनयन आठ साल की आयु में होता था और विवाह बाद में। कालान्तर में विवाह की आयु घटते-घटते आठ साल हो गई तो उपनयन संस्कार स्वतन्त्र रूप से न होकर विवाह संस्कार में सम्मिलित हो गया और धीरे-धीरे समाप्त हो गया। यह सत्य है असत्य यह दूसरी बात है किन्तु शूद्रों का उपनयन होता था।'

द्वितीयः- पेज 121 पर शूद्रों का उपनयन बन्द कर देने से इसके महत्व में अभूतपूर्व परिवर्तन आया जो सामाजिक महत्व का विषय बन गया। परिणाम स्वरूप उनपनयन (यज्ञोपवीत) धारण करना श्रेष्ठता और कुलीनता का द्योतक बन गया, ऐसा माना जाने लगा। इसका दूरगामी प्रभाव यह निकला कि शूद्र, ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को अपने से श्रेष्ठ मानने को बाध्य हुए। वही उक्त तीनों वर्ण शूदों को अपने से हेय मानने लगे और इस प्रकार उपनयन-निरोध से शूदों का पतन प्रारम्भ हुआ।

शिवाजी महाराज के विषय से यह और भी स्पष्ट होता है जिसका वर्णन डॉ. आम्बेडकर ने शूद्र कौन?-124 पर इस प्रकार किया है-

'शिवाजी ने पश्चिमी महाराष्ट्र में स्वतन्त्र हिन्दू राज्य की स्थापना के उपरान्त सिहांसनारुढ़ होने के हेतु अपने राज्याभिषेक का विचार किया। शिवाजी व उनके मित्रों की इच्छा थी कि अभिषेक वैदिक विधि से हो, लेकिन उसमें अनेक बाधाएं थी। प्रथम तो यह कि अभिषेक ब्राह्मणों की इच्छा पर निर्भर करता था। दूसरी कठिनाई यह थी कि जब तक शिवाजी अपने को क्षत्रिय सिद्ध न कर दें राज्याभिषेक असम्भव था। तीसरी बात यह थी कि उपनयन न हो पाने के कारण राज्याभिषेक नहीं हो सकता था।

पहली कठिनाई शिवाजी के लिए चट्टानों जैसी थी। प्रश्न यह था कि क्या शिवाजी क्षत्रिय हैं? यदि यह सिद्ध हो जाता तो शेष आसान था। यद्यपि शिवाजी स्वयं को क्षत्रिय कहते थे, लेकिन बहुत से लोग इसका विरोध करते थे। उनका विराध करने वाले विशेषतः ब्राह्मण थे और उनका नेता स्वयं उसका प्रधानमन्त्री मोरोपन्त था। दुर्भाग्य से शिवाजी के मराठा सरदार भी उन्हें सामाजिक स्तर पर अग्रपद देने को तैयार न थे क्योंकि उनके अनुसार वे शूद्र थे। ब्राह्मणों का मत था कि कलियुग में क्षत्रिय रहे ही नहीं। इस मत को क्षत्रियों के लिए निर्धारित ग्यारह वर्ष की आयु में शिवाजी का उपनयन न होने से और भी अधिक बल मिला। अस्तु उन्हें शूद्र माना गया। सौभाग्य से वेदों और शास्त्रों के पारंगत विद्वान् बनारस के ब्राह्मण विद्वान घाघ भट्ट ने सभी कठिनाईयों को दूर कर 6 जून 1674 को रामगढ़ में शिवाजी का राज्याभिषेक कर दिया।' उसी पेज पर आगे शिवाजी को क्षत्रिय सिद्ध करने के लिये शिवाजी के परम मित्र बालाजी आवाड़ी मेवाड़ से एक वंशावली लाए जिसमें शिवाजी का सम्बन्ध मेवाड़ के सिसौदिया वंश से सिद्ध किया गया था। यह कहा जाता है कि यह वंशावली नहीं थी और मात्र राज्यभिषेक के अवसर के लिए बनवाई गई थी।

उसी पुस्तक के पेज 129 पर 'यह सब इस कारण हुआ कि ब्राह्मण किसी भी हिन्दू का वर्ण निर्धारण करने के अधिकार से सम्पन्न थे। वे शूद्र को क्षत्रिय व क्षत्रिय को शूद्र बनाने में सक्षम थे। शिवाजी के इस मामले में यह सिद्ध हो जाता है कि वर्ण निर्धारण में ब्राह्मणों को असीमित अधिकार प्राप्त हैं।'

उसी पुस्तक के पेज 129-130 पर यह कथा केवल महाराष्ट्र से उद्धृत की गई है, परन्तु ये सिद्धान्त समस्त देश में प्रचलित हैं। यथा-

1. उपनयन का अधिकार केवल ब्राह्मणों को है।
2. ब्राह्मण को अधिकार है कि वह किसी का उपनयन करे अथवा न करे। दूसरे शब्दों में एकमात्र ब्राह्मण ही निर्णय दे सकता है कि अमुक जाति उपनयन की अधिकारी व पात्र है।
3. उपनयन के सम्बन्ध में ब्राह्मण की सहमति के लिए ईमानदारी आवश्यक नहीं है। यह धन देकर भी कराया जा सकता है। शिवाजी ने अतुल धन देकर घाघ भट्ट से अपना उपनयन कराया था।
4. ब्राह्मण द्वारा उपनयन से इंकार का आधार वैधानिक या धार्मिक होना आवश्यक नहीं है। वह राजनीतिक कारण भी हो सकता है। ब्राह्मणों ने वयस्कों का उपनयन राजनैतिक प्रतिद्वन्दिता के कारण बन्द कर दिया था।

उपरोक्त विवेचन से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि उपनयन के सम्बन्ध में ब्राह्मणों को वर्चस्व प्राप्त था। वे किसी को भी उपनयन से वंचित करने में सर्वथा सक्षम थे। अस्तु कोई आश्चर्य का विषय नहीं कि उन्होंने शूद्रों के पतन पराभव के निमित्त इस अधिकार का प्रयोग अमोघअस्त्र के रूप में किया।

स्वाध्याय का आनन्द

-आचार्या डॉ. सुशीला आर्या

पठन-पाठन दो तरह का होता है-एक बौद्धिक विकास के लिए, दूसरा मन व आत्मा को स्वस्थ रखने के लिए। पहले को अध्ययन कहते हैं, दूसरे को स्वाध्याय। अपने ही प्रयत्नों द्वारा अपने को सुधारने, सुसंस्कृत बनाने का एक मुख्य साधन है स्वाध्याय। हमारे ऋषि - मुनियों ने मनुष्य जीवन के सुख व कल्याण के लिए जो सिद्धान्त बतलाएं है उन्हें एकमात्र स्वाध्याय से ही जाना जा सकता है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में एक आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करता है-**सत्यं वद। धर्मंचर, स्वाध्याय मा प्रमदः।** अर्थात् हे शिष्य तुम सत्य और धर्म का आचरण करना, स्वाध्याय में कभी प्रमाद मत करना। तैत्तिरीयोषनिषद् के इस सन्देश को ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश के तीसरे सम्मुलास में उद्धृत किया है- **"ऋतं च स्वाध्याय प्रवचने च। सत्यं च स्वाध्याय प्रवचने च। तपश्च स्वाध्याय प्रवचने च। दमश्च स्वाध्याय प्रवचने च। शमश्च स्वाध्याय प्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्याय प्रवचने च। अग्निहोत्रं च स्वाध्याय प्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्याय प्रवचने च। मानुषं च स्वाध्याय प्रवचने च। प्रजा च स्वाध्याय प्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्याय प्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्याय प्रवचने च।** -अर्थात् आचरण से पढ़ें और पढ़ावें, सत्याचार से सत्यविद्या को पढ़ें व पढ़ावें, तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रों को पढ़ें और पढ़ावें। बाह्य इन्द्रियों को बुरे आचरणों से रोक के पढ़ें और पढ़ाते जायें, आहवनीयादि अग्नि और विद्युत को जान के पढ़ते-पढ़ाते जायें, और अग्निहोत्र करते हुए पठन और पाठन करें-करावें, अतिथियों की सेवा करते हुए पढ़ें और पढ़ावें, मनुष्य सम्बन्धी व्यवहारों को यथायोग्य करके पढ़ते और पढ़ाते रहें, अर्थात् सन्तान और राज्य का पालन करते हुए पढ़ते-पढ़ाते जायें, वीर्य की रक्षा और वृद्धि करते हुए पढ़ते-पढ़ाते जायें, अपने सन्तान और शिष्य का पालन करते हुए पढ़ते-पढ़ाते जायें।

हमारे ऋषि-मुनियों ने स्वाध्याय पर इतना बल क्यों दिया है, इसके उत्तर में 'ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका' में स्वामी दयानन्द लिखते हैं-**"जितने ब्रह्माण्ड में उत्तम पदार्थ हैं उनकी प्राप्ति से जितना सुख होता है सो सुख विद्या-प्राप्ति से होने वाले सुख के हजारवें अंश के भी समतुल्य नहीं हो सकता। ऐसा सर्वोत्तम विद्या-पदार्थ जो वेद है उसका उपदेश परमेश्वर क्यों न करता।"**

विद्या के अन्तर्गत भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार के ज्ञान-शामिल हैं, अर्थात् जिससे लौकिक सुख और मोक्ष सुख की प्राप्ति हो वह पृथिवी से लेकर ईश्वर पर्यन्त पदार्थों को जनाने वाला ज्ञान 'विद्या' है। वेदों में वह सब ज्ञान है जिससे मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति हो सकती है। समस्त लक्ष्यों का मूल है विद्या।

स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति इस ज्ञान के अमूल्य भण्डार से अपने को तृप्त करता है। स्वाध्याय करने से जहां हम वेद के सिद्धान्तों को समझ सकते हैं वहीं बड़े-बड़े विद्वनों एवं महापुरुषों के विचारों को भी जान सकते हैं। कई महापुरुषों के जीवन-चरित और विचार हमें प्रेरणा, शक्ति व उत्साह देते हैं। हमारे जीवन की कितनी ही शंकाओं का समाधान इनके विचारों से हमें मिलता है।

इतना ही नहीं स्वाध्याय से हम अतीत की घटनाओं से परिचित होते हैं। संसार के बड़े-बड़े राज्यों की उत्पत्ति-वृद्धि और पतन का हमें ज्ञान होता है। स्वाध्याय से ही हमें पता चलता है कि किस प्रकार क्रूर व पशुवत् व्यवहार करने वाली जातियों ने हम पर शासन किया। पुस्तकों से ही हमें यह ज्ञात होता है कि किन-किन कारणों से, किन-किन अवस्थाओं में एक जाति प्रताप व शक्ति से वंचित होती है और दूसरी जाति शक्ति व सामर्थ्य से सम्पन्न होती है। ये ऐतिहासिक घटनाएं हमें आत्मनिरीक्षण का अवसर देती हैं।

स्वाध्याय से साधारण ज्ञान की भी वृद्धि होती है। इस ज्ञानवृद्धि से मनुष्य चाहे जिस क्षेत्र में हो उन्नति के पथ पर बढ़ सकता है। एक घण्टे के दैनिक स्वाध्याय से मनुष्य भली-भांति किसी पुस्तक के 20 पृष्ठ पढ़ सकता है। एक वर्ष में वह किसी पुस्तक के सात हजार से अधिक पृष्ठ अर्थात् 400 पृष्ठ वाले 18 ग्रन्थों का अध्ययन कर सकता है। एक साधारण व्यक्ति भी विद्वता प्राप्त कर सकता है। चार्ल्स फ्रॉस्ट एक चर्मकार (Shoe maker) था परन्तु वह नियमित रुप से प्रतिदिन एक घण्टा अध्ययन करके अमेरिका में गणित का सबसे बड़ा (गणितज्ञ) बन गया। मिल्टन ने जिन दिनों अपना महाकाव्य 'पैराडाइजलास्ट' लिखा था, वह उन दिनों ब्रिटिश कॉमनवैल्थ का मंत्री था उसने अपने व्यस्त समय में से बचे हुए क्षणों का सदुपयोग करके ही इस महान व प्रसिद्ध काव्य की रचना की थी।

सभी तरह की समस्याओं का समाधान है विद्या। व्यक्ति जहां अपने वर्तमान को संवार सकता है वह भविष्य में आने वाली कठिनाईयों का भी आसानी से सामना कर सकता है। इसके विपरीत अशिक्षित व्यक्ति अज्ञानता व अविद्या के कारण जो कुछ सामने देखता है, उसे जानता है और कई बार प्रत्यक्ष को भी अच्छी तरह नहीं देख सकता।

ज्यों-ज्यों व्यक्ति की विद्या बढ़ती है, त्यों-त्यों वह सिद्धान्तों को अच्छे से समझ पता है, तभी वह सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन कर पाता है। सिद्धान्तों की दृढ़ता ही व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को आगे बढ़ाती है। क्यों न हम विद्या के महत्त्व को समझें? इन सब विद्याओं में सर्वश्रेष्ठ विद्या आर्यों की विद्या, वेद-विद्या है। इसे ग्रहण कर स्वयं सुदृढ़ व प्रबल बनें व अन्यों को भी बनावें।

आओ यज्ञ करें!

अमावस्या	17 सितम्बर दिन-गुरुवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-पू.फाल्गुनी
पूर्णिमा	01 अक्टूबर दिन-गुरुवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-उत्तराभाद्रपदा
अमावस्या	16 अक्टूबर दिन-शुक्रवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-हस्त
पूर्णिमा	31 अक्टूबर दिन-शनिवार	मास-आश्विन	ऋतु-शरद	नक्षत्र-अश्विनी

सहज सरल सांख्य-४

- आचार्य सतीश, दिल्ली

अब शास्त्रकार कहता है कि ईश्वर किसी प्रकार से सृष्टि का उपादान कारण सिद्ध नहीं होता। उसे हम प्रत्यक्ष से तो जगतरूप में परिवर्तित होते देख नहीं पाते और अनुमान से यह भी जान सकतें है कि चेतन की दो ही अवस्थाएँ है मुक्त या बद्ध। यदि जगत को उसका परिणाम माना जाए तो वह मुक्त नहीं रहा और यदि बद्ध माना जाए तो फिर धर्म-अधर्म आदि के साथ सबन्ध होने से वह ईश्वर कैसे रहेगा? अत: किसी भी अवस्था में वह जगत का उपादानभूत सिद्ध नहीं होता है।

उसे मुक्त या बद्ध कैसा भी मानें पर वह चेतन तो है और जगतरूप जड़ है, फिर चेतन का परिणाम जड़रूप कैसे होगा और यदि कार्य का उपादान मान लिया जाए तो ईश्वर को अचेतन मानना पड़ेगा। लेकिन श्रुति आदि शास्त्रों में ऐसा ईश्वर असिद्ध है। अत: जगत का उपादानभूत किसी भी दृष्टि से ईश्वर नहीं है।

तो फिर उपनिषदों आदि में ऐसा क्यों मिलता है?

नित्यमुक्त आत्मा, परमात्मा है; कोई भगवत्भक्त उसकी उपासना में जब सक्रिय होता है तब वह केवल उसी के अस्तित्व को अपने प्रम्मुख देखना चाहता है उसी को सब कुछ मान लेता है अर्थात् माता-पिता, बन्धु-सखा, विद्या-धन और सर्वस्व तक उसी को मान लेता है। इस प्रकार के उल्लेख परमात्मा की प्रशंसा अथवा उसी की उपासना की दृष्टि से लिखे गए हैं, अर्थ की वास्तविकता के आधार पर नहीं। अत: परमात्मा जगत का उपादान कारण है इसमें शब्द का भी प्रमाण नहीं है।

यदि ईश्वर सृष्टि का उपादान नहीं है तो उसकी स्थिति का स्वरूप क्या है?

अचेतन प्रकृति में कोई भी प्रवृत्ति चेतन की प्रेरणा के बिना नहीं होती। चेतन परमात्मा केवल अपने सानिध्य से समस्त प्रवृत्ति का संचालन करता है जैसे- मणि (चुम्बक), लौह धातु को अपने सानिध्य मात्र से विचलित कर देता है। प्रकृति में प्रत्येक क्रिया या परिणाम चेतन की प्रेरणा से होता है। चेतन परमात्मा जगत का उपादान होकर प्रकृति में क्रिया का निमित्त है। अल्पज्ञ, अल्पशक्ति व अल्पउपस्थिति आदि न्यूनताओं के कारण जीवात्मा समस्त विश्व का नियन्ता व अधिष्ठाता सम्भव नहीं।

तो फिर जीवात्मा किस का अधिष्ठाता है?

देह, इन्द्रियाँ तथा बुद्धि आदि अचेतन तत्व स्वत: प्रवृत नहीं हो सकते। इनकी सब प्रवृत्तियाँ चेतन आत्मा के योग आदि के लिए होती हैं। तथा उसी के नियन्त्रण में होने के कारण वह इसका अधिष्ठाता एवं कर्ता कहा जाता है और जीवात्मा में अनेक शास्त्र, प्रमाणों के आधार पर भी दृष्टा, श्रोता, कर्त्ता, अधिष्ठाता के रूप में भोक्ततृत्व, कृर्तत्व आदि धर्म-प्रमाणित होते हैं।

जब ज्ञान, संशय, इच्छा आदि भाव अन्त:करण में अपना अस्तित्व पाते हैं तो इनकी अनुभूति अन्त:करण में ही क्यों न मानी जाए, आत्मा अधिष्ठाता क्यों?

अन्त: करण ज्ञान आदि का साधन है, उसके उज्ज्वलित होने का अर्थ यही है कि वह आत्मा के लिए इन्द्रिय द्वारा विषयों को समर्पित करने में तत्पर रहता है। बुद्धि के अचेतन होने से स्वत: किसी प्रकार की प्रवृत्ति उसमें नहीं हो सकती, चेतन के सम्पर्क से ही बुद्धि में प्रवृत्ति का उद्भव होता है। जैसे लोहे की श्लाका में अग्नि के सम्पर्क से ही उसमें दाहकता होती है उसके बिना वह किसी को जला नहीं सकता।

अब अनुमान प्रमाण को जानते हैं। दो वस्तुओं का ऐसा सम्बन्ध जो एक दूसरे को छोड़ न सके। जैसे- जिसकी उत्पत्ति हुई है वह अनित्य है या जो अनित्य है उसकी उत्पत्ति अवश्य हुई है। यहाँ दोनों का साहचर्य सम्बन्ध है। इनमें से किसी एक के आधार पर दूसरे का निश्चय कर सकते हैं। जो निश्चयात्मक है वह हेतु और जिसका निश्चय किया जाना वह साध्य है। यही अनुमान है।

शब्द प्रमाण क्या है?

आप्तों का उपदेश शब्द प्रमाण है, जिन व्यक्तियों ने एक वस्तु का साक्षात्कार करके उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया हुआ है, वे उस विषय में आप्त कहे जाते हैं। ऐसे व्यक्ति का उपदेश शब्द प्रमाण है।

अब चूंकि वेद किसी व्यक्ति विशेष का प्रमाण नहीं है इसलिए उसमें भ्रमादि दोषों की संभावना नहीं हो सकती। अत: उसका प्रामाण्य स्वत: सिद्ध है।

प्रमाणों का फल यह है कि इन समस्त प्रमाणों से बुद्धिवृति के द्वारा पुरुष को बोध होता है वह प्रत्यक्ष, अनुमिति अथवा शब्द ज्ञान है।

इन प्रमाणों के प्रतिपादन का प्रयोजन क्या है?

प्रत्येक वस्तु की यथार्थता का निश्चय प्रमाणों से ही होता है। इन प्रमाणों से ही चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के पदार्थों की सिद्धि होती है, जिनमें समस्त विश्व का समावेश है।

तो फिर मूलभूत प्रकृति और चेतन का ज्ञान किस प्रमाण के द्वारा होता है?

सामान्यतोदृष्ट अनुमान से अचेतन प्रकृति और चेतन पुरुष दोनों की सिद्धि होती है। दृष्ट दो पदार्थों के नियत साहचर्य के आधार पर जब हम अदृष्ट पदार्थों के सम्बन्धों में अनुमान करते हैं तो वह सामान्यतोदृष्ट अनुमान कहा जाता है।

हम देखते हैं कि प्रत्येक कार्य का उपादान कोई सजातीय पदार्थ होता है जैसे घड़े का मिट्टी, कुण्डल का सुवर्ण। हम यह भी देखते हैं कि जगत का प्रत्येक पदार्थ त्रिगुणात्मक देखा जाता है। एक ही पदार्थ किसी के लिए सुखकर, किसी के लिये दु:खकर, किसी के लिये उपेक्ष्य है। हांलाकि हमने जगत को कभी उत्पन्न होते नहीं देखा परन्तु उपरोक्त सामान्य नियम के अनुसार जगत का उपादान उसी का सजातीय त्रिगुणात्मक तत्व (अर्थात् सत्व, रजस्, तमस् रूपी) मूल प्रकृति सिद्ध होता है।

हम यह भी देखते हैं कि जितने भी पदार्थ जैसे, मेज, कुर्सी, पैन, पुस्तक, कपड़ा आदि का अपने लिए कोई उपयोग नहीं है, वे किसी दूसरे के उपयोग के लिए हैं अर्थात् प्रत्येक परिणामी तत्व परार्थ के लिए है। यह 'पर' अर्थात् अन्य कोई अचेतन तत्व नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक परिणामी तत्व अचेतन है व अचेतन, अचेतन के लिए हुआ तो परार्थ कहाँ हुआ? फिर तो वह अपने परार्थ रूप से ही दूर हो जाएगा। अत: वह 'पर' अर्थात् अन्य कोई चेतन तत्व ही हो सकता है। इस प्रकार सामान्यतोदृष्ट अनुमान से अतीन्द्रिय चेतन तत्व की भी सिद्धि हो जाती है।

क्रमश ....

गृहस्थ सम्बन्ध : भाग-१४

- आचार्य संजीव आर्य, मु०नगर

ओ३म् इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ ॥

-अथर्ववेद १४/९/२२

भावार्थ- हे स्त्री और पुरुष! मैं परमेश्वर आज्ञा देता हूँ कि जो तुम्हारे लिए पूर्व (विवाह) में प्रतिज्ञा हो चुकी है जिसको तुम दोनों ने स्वीकार किया है, इसी में तत्पर रहो, इस प्रतिज्ञा से वियुक्त मत होओ। ऋतुगामी होके वीर्य का अधिक नाश न करके सम्पूर्ण आयु जो सौ वर्ष से कम नहीं है, उसको प्राप्त होओ। और पूर्वोक्त धर्मरीति से पुत्रों और नातियों के साथ क्रीड़ा करते हुवे उत्तम गृहवाले आनन्दित होकर गृहाश्रम में प्रीतिपूर्वक वास करो।

गृहस्थ क्रीड़ा, आनन्द और कल्याण के लिए है और वह भी पुत्रों और नातियों के साथ। विचार करें तो युवावस्था है ही क्रीड़ा के लिए वा इह लौकिक सुख के लिए यह बिना सन्तति के हो नहीं सकता तभी पुत्रों-पुत्रियों नातियों-पौत्रों आदि स्वजनों के साथ ही गृहस्थ वास करे, आनन्द में रहे परन्तु लम्पट न हो, साथ ही स्मरण रहे यह हो तभी सकता है जब गृहस्थ दम्पत्ती विवाह संस्कार में जिन नियमों, प्रतिज्ञाओं, कर्तव्यों और अकर्तव्यों को स्वीकार करने की प्रतिज्ञायें ली उन के पालन में तत्पर रहो। उसमें किसी प्रकार का प्रमाद न करो, कभी भी अपनी उस प्रतिज्ञा को भूलो मत, छोड़ो मत। ये कर्तव्याकर्तव्य की प्रतिज्ञायें वास्तविक गृहस्थ का राजपथ हैं, इस राजपथ को छोड़ पगडंडियों के उलझन भरे मार्ग पर जीवन को बढ़ाना किसी भी बुद्धिमान का काम नहीं हो सकता। ये पगड़ंड़ियों का पथ एक भूलभुलैया है जिसमे जीवन खो जाता है खुशियाँ कभी मिल ही नहीं पाती हैं। ऋषियों की मान्यता है कि गृहस्थ को वेदरूपी राजपथ पर ही चलना श्रेयस्कर है इसी पथ के लिए तो यह गृहाश्रम विधि का पूरा उपदेश है। वैदिक आश्रम व्यवस्था का यदि संक्षेप से विश्लेषण करें तो जीवन के प्रमुख उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति ही सभी आश्रमों का उद्देश्य है। गृहस्थ भी उसमें एक पड़ाव है। यदि गृहस्थ ठीक से न जी पाये तो वानप्रस्थ और संन्यास भी ठीक-ठीक नहीं हो पायेंगे। अतः गृहस्थ के निर्देशों का पालन आवश्यक है। ऐसा ही एक निर्देश है-

ओ३म सुमगंली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः ।
स्योना श्वश्रैवै प्र गृहान् विशेमान् ॥१॥
स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः ।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव ॥ २॥

हे वरानने! तू अच्छे मंगलाचरण करने तथा दोष और शोकादि से पृथक रहनेहारी, गृहकार्यों में चतुर और तत्पर रहकर उत्तम सुखयुक्त होके पति, श्वशुर और सासु के लिए सुखकर्त्ता और स्वयं प्रसन्न हुई इन घरों में सुखपूर्वक प्रवेश कर ।।1।।

हे वधू! तू श्वशुरादि के लिए सुखदाता, पति के लिए सुखदाता और गृहस्थ सम्बन्धियों के लिए सुखदायक हो और इस सब प्रजा के अर्थ सुखप्रद और इनके पोषण के अर्थ तत्पर हो।

वधु सुमगंली है। उसका आचरण मंगलाचरण ही हो जाता है। उसके आचरण से ही घर में मंगल होता है- सबको उस ही से आशा है, सब उस ही से सुख चाहते हैं पति भी श्वसुर भी, सासु भी, ननन्द भी, देवर भी और सम्बन्धी भी। देने से ही कोई देवता होता है तो यह भी सुखदात्री देवी ही है लेकिन स्मरण रहे दे वही सकता है, जिसके पास हो, यदि वह सुखी है तभी तो दूसरों को सुख दे सकेगी। यदि वह पुष्ट है तभी औरों को पुष्ट कर सकेगी। कई स्थानों पर इसे सुख मिल ही नहीं पाता है। कहीं मिलता तो है किन्तु उसे सुखी रहना ही नहीं आता है। जहाँ उसे सुखी रहना ही नहीं आता यह उसे सिखाना होगा, कैसे हो? इसके लिए ईश्वरीय निर्देश-

ओ३म् या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि ।
वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन ॥ -अथर्व. १४/२/२९

जो (दुर्हादः) दुष्ट हृदय वाली अर्थात् दुष्टात्मा जवान और ऐसी ही वृद्ध स्त्रियाँ हों वे भी इस वधु को शीघ्र तेज देवें इसके पश्चात् अपने अपने घर को चली जावें और फिर इसके पास कभी न आवें।

दुष्टात्माओं से सब प्रकार से बचने में ही लाभ है। जो परिवार भूत-प्रेत आदि अन्धविश्वासों में पढ़कर किन्हीं अदृश्य दुष्टात्माओं को मानते हैं वह तो असत्य है किन्तु जो दुष्ट हृदय या बुरे मन वाली बूढ़ी और युवती स्त्रियाँ उल्टी सीख दे सकती हैं। इसके परिवार में अशान्ति वा उपद्रव करा परिवार को तोड़ भी सकती हैं। ये सिखाती हैं, इनसे सीखना चाहिए, परन्तु वह नहीं जो ये सिखाना चाहती हैं, इनसे दूर रहना सीखना होगा, सावधान सर्तक रहना सीखना होगा यही इनसे मिलने वाला तेज है। ये दुरात्मायें जिसके पास रहेंगी वह चैन से नहीं रह सकता। अतः इनसे दूर रहने में ही लाभ है। गृहस्थ, समाज और राष्ट्र की अगली पीढ़ी, भावी सन्नति को उत्पन्न करता है। उसे पाल पोषकर, बड़ा करता है, संस्कार देता है। राष्ट्र का भविष्य इन्हीं बालकों के सामर्थ्य से निश्चित होता है। यदि गृहस्थ सुखी, समृद्ध, शान्त और संस्कारित नहीं है, तो भावी पीढ़ी इसके प्रभाव से अछूती नहीं रह सकती है। गृहस्थ के सुख, समृद्धि संस्कार एवं शान्ति का पैमाना वधू है। अतः वेद भगवान का आदेश है-

ओ३म् आरोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि ॥

-अथर्व. १४/२/२९

भाषार्थः हे वरानने! तू प्रसन्न चित्त होकर पर्यङ्क (पलंग) पर चढके शयन कर और इस गृहस्थ में स्थिर रहकर इस पति के लिए प्रजा को उत्पन्न कर। सुन्दर, ज्ञानी, उत्तम शिक्षा को प्राप्त सूर्य की कान्ति के समान तू उषःकाल से पहिली ज्योति के तुल्य प्रत्यक्ष सब कार्यों में जागती रह।

सब कार्यों में प्रत्यक्ष जागते रहने का तात्पर्य सावधान बने रहने से है क्योंकि अनवधानता से अशान्ति होन के अवसर ही अधिक हैं। जबकि पहले ही कह चुके हैं कि उत्तम सन्तति निर्माण के लिए शान्ति अत्यन्त आवश्यक है। जिससे पत्नी और पति अपने ज्ञान को बढ़ाकर प्रेमपूर्वक नियमों में बंधकर उत्तमोत्तम सन्तति का निर्माण वा पालन पोषण कर सकें यथा-

ओ३म् इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती।
प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम्॥ -अथर्व. १४/२/६४

भाषार्थः- हे परमैरवर्ययुक्त विद्वान् राजन् आप इस संसार में इन स्त्रीपुरुषों को समय पर विवाह करने की आज्ञा और ऐसी व्यवस्था

शेष अगले पृष्ठ पर ....

पिछले पृष्ठ का शेष .... दीजिए कि जिससे कोई स्त्रीपुरुष समय से पूर्व वा अन्यथा विवाह न कर सकें, वैसे सबको प्रसिद्धि से प्रेरणा कीजिए जिससे ब्रह्माचर्यपूर्वक शिक्षा प्राप्त करके पत्नि और पति चकवा-चकवी के समान एक दूसरे से प्रेमाबद्ध रहें। साथ ही गर्भाधान संस्कार में कही हुई विधि से उत्पन्न हुई प्रजा से ये दोनों सुख युक्त होके सम्पूर्ण सौ वर्ष पर्यन्त आयु को प्राप्त होवें।

उपरोक्त ईश्वरीय निर्देश में एक अद्‌भुत सन्तुलन है जहाँ राजा के लिये निर्देश है कि ऐसा प्रबन्ध करे जिससे बाल-विवाह, बेमेल-विवाह वा नियम विरुद्ध सगौत्र विवाह आदि समाज में प्रवृत्त न होने पावें। प्रजा में यथेच्छाचार न हों। सम्बन्ध नियमों में बंधे सुव्यवस्थित हों। वहीं विवाह के पश्चात् पत्नी और पति में प्रेम की तुलना चकवा और चकवी से की गयी है। कहते हैं कि ये दोनों एक दूसरे के बिना रह ही नहीं पाते। रात्री में इन्हें दूर रहना पड़ता है तब दोनों एक-दूसरे की स्मृति में तड़फते रहते हैं। ईश्वर के आदेश को मानते हुये सभी गृहस्थों को चाहिये कि परस्पर चकवा-चकवी के जैसा ही प्रेम रखें। यह प्रेम जहाँ इन दोनों के सुख के लिये आवश्यक है वहीं भावी पीढ़ी के व्यवस्थित निर्माण के लिये इन दोनों का यही सम्बन्ध, यही विश्वास पोषण का काम करता है। यह प्रेम परिवार के ही नहीं, समाज के भी सुख का साधन है।

क्रमश ....

राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा द्वारा आयोजित दो दिवसीय सत्रों व सभा से सम्बन्धित नवीन जानकारी सभा की बेवसाईट-

www.aryanirmatrisabha.com

पर उपलब्ध है। अतः आप वहाँ से जानकारी ले सकते हैं। यह पत्रिका भी प्रत्येक मास दिनांक 10 को सभा की बेवसाईट पर डाल दी जाती है अतः पत्रिका को पढ़ने के लिए साईट के लिंक www.aryanirmatrisabha.com/हिन्दी में पत्रिका पर जाएं।

शिल्पी कहे माटी से

– अवनीश पंवार, मु०नगर

तुझे याद रहा
वो पैरों तले रौंदा जाना,
पर भूल गया
सुन्दरता से आकार पाना।
कितनी लगन से
तुझे बनाया था पात्र,
पर तू तो भरा रहा
ऐष्णाओं से मात्र।
जिस अगन में
तपे थे सभी,
लक्ष्य की ओर
बढ़ रहे अभी।
तू अहंकार में
स्वार्थी होकर टूट गया,
अकेला रह गया
साथ छूट गया।
न ताप झेल सका
न दाब सह सका
न बन सका बर्तन
टूटकर ठींकरा हुआ।
कुछ के पाँव में
चुभकर शूल बना,
कुछ के हृदय का
भावुक फूल बना।

ये तो नहीं थी
कभी भी तेरी मंजिल,
भटककर राह से
बिखरा तिल तिल।
अभी भी
कुछ बिगड़ा नहीं है,
सब तेरे हैं
कोई झगडा नहीं है।
फैसला कर ले
फिर मिट्‌टी हो जाने का,
सोखकर नमीं
धरती में खो जाने का।
प्रकृति माँ है
फिर मौका देगी,
समय पिता है
फिर प्यार करेगा।
ढूंढ ही लेगा
कोई तो शिल्पी,
फिर तुझे
मनचाहा आकार देगा।
उदास न हो
द्वेष से न भर,
तू तो ज्ञानी है
बस कर्म कर।

जो पीड़ा में हैं
तेरे टूट जाने से,
उन्हें संभाल
रूठ जाने से ...।
एक एक शब्द
जो तूने कहे थे कभी,
ध्यान से सुनना
गूंज रहे हैं अभी।
व्यक्ति के पीछे
पागल न होना,
संगठन की खातिर
जान भी देना।
मैं कभी
तोड़ दूँ मर्यादा,
तो काट लेना
मेरा शीश आधा।
बस इतना
कहना था तुमसे,
कम को ही
अधिक समझना।
तुम थे
बहुतों की प्रेरणा,
इस आदर का
मान रखना...

3 सितम्बर- 1 अक्टूबर 2020 **आश्विन** ऋतु- शरद

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
			पूर्वाभाद्रपदा कृष्ण प्रतिपदा 3 सितम्बर	उत्तराभाद्रपदा कृष्ण द्वितीया 4 सितम्बर	रेवती कृष्ण तृतीया 5 सितम्बर	अश्विनी कृष्ण चतुर्थी 6 सितम्बर
भरणी कृष्ण पंचमी 7 सितम्बर	भरणी कृष्ण षष्ठी 8 सितम्बर	कृत्तिका कृष्ण सप्तमी 9 सितम्बर	रोहिणी कृष्ण अष्टमी 10 सितम्बर	मृगशिरा कृष्ण नवमी 11 सितम्बर	आर्द्रा कृष्ण दशमी 12 सितम्बर	पुनर्वसु कृष्ण एकादशी 13 सितम्बर
पुष्य कृष्ण द्वादशी 14 सितम्बर	आश्लेषा कृष्ण त्रयोदशी 15 सितम्बर	मघा कृष्ण चतुर्दशी 16 सितम्बर	पू० फाल्गुनी कृष्ण अमावस्या 17 सितम्बर	उ० फाल्गुनी/हस्त शुक्ल प्रतिपदा 18 सितम्बर	चित्रा शुक्ल द्वितीया/तृतीया 19 सितम्बर	स्वाति शुक्ल चतुर्थी 20 सितम्बर
विशाखा शुक्ल पंचमी 21 सितम्बर	अनुराधा शुक्ल षष्ठी 22 सितम्बर	ज्येष्ठा शुक्ल सप्तमी 23 सितम्बर	मूल शुक्ल अष्टमी 24 सितम्बर	पूर्वाषाढ़ा शुक्ल नवमी 25 सितम्बर	उत्तराषाढ़ा शुक्ल दशमी 26 सितम्बर	श्रवण शुक्ल एकादशी 27 सितम्बर
धनिष्ठा शुक्ल द्वादशी 28 सितम्बर	शतभिषा शुक्ल त्रयोदशी 29 सितम्बर	पूर्वाभाद्रपदा शुक्ल चतुर्दशी 30 सितम्बर	उत्तराभाद्रपदा शुक्ल पूर्णिमा 1 अक्टूबर			

2 अक्टू - 31 अक्टू 2020 **आश्विन (अधिमास)** ऋतु- शरद

सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरुवार	शुक्रवार	शनिवार	रविवार
विजय दिवस आश्विन शुक्ल दशमी 25 अक्टूबर				रेवती कृष्ण प्रतिपदा 2 अक्टूबर	रेवती कृष्ण द्वितीया 3 अक्टूबर	अश्विनी कृष्ण द्वितीया 4 अक्टूबर
भरणी कृष्ण तृतीया 5 अक्टूबर	कृत्तिका कृष्ण चतुर्थी 6 अक्टूबर	रोहिणी कृष्ण पंचमी 7 अक्टूबर	मृगशिरा कृष्ण षष्ठी 8 अक्टूबर	आर्द्रा कृष्ण सप्तमी 9 अक्टूबर	पुनर्वसु कृष्ण अष्टमी 10 अक्टूबर	पुष्य कृष्ण नवमी 11 अक्टूबर
आश्लेषा कृष्ण दशमी 12 अक्टूबर	मघा कृष्ण एकादशी 13 अक्टूबर	पू० फाल्गुनी कृष्ण द्वादशी 14 अक्टूबर	उ० फाल्गुनी कृष्ण त्रयोदशी/चतुर्दशी 15 अक्टूबर	हस्त कृष्ण अमावस्या 16 अक्टूबर	चित्रा शुक्ल प्रतिपदा 17 अक्टूबर	स्वाति/विशाखा शुक्ल द्वितीया 18 अक्टूबर
अनुराधा शुक्ल तृतीया 19 अक्टूबर	ज्येष्ठा शुक्ल चतुर्थी 20 अक्टूबर	मूल शुक्ल पंचमी 21 अक्टूबर	पूर्वाषाढ़ा शुक्ल षष्ठी 22 अक्टूबर	उत्तराषाढ़ा शुक्ल सप्तमी 23 अक्टूबर	श्रवण शुक्ल अष्टमी 24 अक्टूबर	धनिष्ठा शुक्ल नवमी 25 अक्टूबर
शतभिषा शुक्ल दशमी 26 अक्टूबर	शतभिषा शुक्ल एकादशी 27 अक्टूबर	पूर्वाभाद्रपदा शुक्ल द्वादशी 28 अक्टूबर	उत्तराभाद्रपदा शुक्ल त्रयोदशी 29 अक्टूबर	रेवती शुक्ल चतुर्दशी 30 अक्टूबर	अश्विनी शुक्ल पूर्णिमा 31 अक्टूबर	

गौकरुणानिधिः - गौ आदि पशुओं की रक्षा के लिये ऋषि का संदेश

ऋषि दयानन्द ने वेद के सिद्धान्तों को जनसामान्य तक पहुँचाने के लिए अन्य कार्यों के साथ-साथ एक पूर्णकालिक लेखक के रूप में भी अनेकों ग्रन्थों की रचना की है। उन्होंने विशुद्ध व्याकरण के ग्रन्थों से लेकर वेदभाष्य तक व सत्यार्थ प्रकाश जैसे कालजयी ग्रन्थ से लेकर गायादि पशुओं की रक्षा व उपयोगिता के लिए गौकरुणानिधि जैसी सामान्य जन के लिए भी अत्यन्त उपयोगी पुस्तकों की रचना की है। ऋषि ने इस पुस्तक में गायादि पशुओं के पूरे अर्थशास्त्र को, उनकी उपयोगिता को दर्शाया है तथा समीक्षा भाग में मांसाहार व मद्यपान आदि की निस्सारता व हानियों को दर्शया हैं। वहीं दूसरी ओर नियमादि देकर कृषि तथा पशुओं की उन्नति का मार्ग प्रदर्शित किया है।

यहाँ प्रस्तुत है गौकरुणानिधि पुस्तक, आईये इसका स्वाध्याय करते हैं। ध्यान से पढ़ें तथा विचार करें कि यदि हम ऋषि के बताए अनुसार गायादि पशुओं की रक्षा करते हैं, उनका उपयोग लेते हैं तो न केवल पूरे राष्ट्र को अपितु एक एक व्यक्ति व एक एक परिवार स्मृद्धि को प्राप्त हो सकता है। यही मार्ग हमारी आर्थिक उन्नति का मूल है तथा इसको अपनाकर हम पाप से भी बच सकते हैं।

गतांक से आगे ...

हिंसक-देखो, जो मांसाहारी पशु और मनुष्य हैं वे बलवान् और जो मांस नहीं खाते, वे निर्बल होते हैं, इसलिए मांस खाना चाहिए।

रक्षक-क्यों अल्प समझ की बातें मानकर कुछ भी विचार नहीं करते। देखो, सिंह मांस खाता है सुअर व अरणा भैंसा मांस कभी नहीं खाता। परन्तु जो सिंह बहुत मनुष्यों के समुदाय में घिरे तो एक या दो को मारता, और एक या दो गोली या तलवार के प्रहार से मर भी जाता है। और जब वराही सुअर वा अरणा भैंसा जिस प्राणिसमुदाय में घिरता है। तब वह उन अनेक सवारों और मनुष्यों को मारता और अनेक गोली तथा तलवार आदि के प्रहारों से भी शीघ्र नहीं गिरता। और सिंह उनसे डरके अलग सटक जाता है, और वह सिंह से नहीं डरता।

और जो प्रत्यक्ष दृष्टान्त देखना चाहो, तो एक मांसाहारी का एक दूध-घी और अन्नाहारी मथुरा के मल्ल चौबे से बाहुयुद्ध हो, तो अनुमान है कि मांसाहारी को पटक उसकी छाती पर चौबा चढ़ ही बैठेगा। पुनः परीक्षा होगी कि किस-किस के खाने से बल न्यून और अधिक होता है।

भला, तनिक विचार तो करो कि छिलकों के खाने से अधिक बल होता है, अथवा रस और जो सार है उसके खाने से ? मांस छिलके के समान और दूध-घी और रस सार के तुल्य है। इसको जो युक्तिपूर्वक खावे, तो मांस से अधिक गुण और बलकारी होता है। फिर मांस का खाना व्यर्थ और हानिकारक, अन्याय, अधर्म और दुष्ट कर्म क्यों नहीं?

हिंसक-जिस देश में सिवाय मांस के अन्य कुछ नहीं मिलता वहां, वा आपत्काल में, अथवा रोगनिवृत्ति के लिये मांस खाने में दोष नहीं होता।

रक्षक-यह आपका कहना व्यर्थ है। क्योंकि जहाँ मनुष्य रहते हैं, वहाँ पृथिवी अवश्य होती है। जहाँ कुछ भी नहीं होता, वहाँ मनुष्य भी नहीं रह सकते। और जहाँ ऊसर भूमि है, वहाँ मिष्ट जल और फलाहारादि के न होने से मनुष्यों का रहना भी दुर्घट है। और आपत्काल में भी अन्य उपायों से निर्वाह कर सकते हैं, जैसे मांस के न खानेवाले करते हैं और विना मांस के रोगों का निवारण भी ओषधियों से यथावत् होता है, इसलिए मांस खाना अच्छा नहीं।

हिंसक-जो कोई भी मांस न खावे, तो पशु इतने बढ़ जाये कि पृथिवी पर भी न समावें। इसीलिए ईश्वर ने उसकी उत्पत्ति भी अधिक की है। तो मांस क्यों न खाना चाहिए?

रक्षक-वाह! वाह!! वाह!!! यह बुद्धि का विपर्यास आप को मांसाहार ही से हुआ होगा। देखो, मनुष्य का मांस कोई नहीं खाता, पुनः क्यों न बढ़ गये? और इनकी अधिक उत्पत्ति इसलिए है कि एक मनुष्य के पालन-व्यवहार में अनेक पशुओं की अपेक्षा है। इसलिए ईश्वर ने उनको अधिक उत्पन्न किया है।

हिंसक-ये जितने उत्तर किये, वे सब व्यवहारसम्बन्धी हैं। परन्तु पशुओं को मारके मांस खाने में अधर्म तो नहीं होता। और जो होता है, तो तुमको होता होगा। क्योंकि तुम्हारे मत में निषेध है, इसलिए तुम मत खाओ। और हम खावें, क्योंकि हमारे मत में मांस खाना अधर्म नहीं है।

रक्षक-हम तुमसे पूछते हैं कि धर्म और अधर्म व्यवहार ही में होते हैं, वा अन्यत्र? तुम कभी सिद्ध न कर सकोगे कि व्यवहार से भिन्न धर्माधर्म होते हैं। जिस-जिस व्यवहार से दूसरों की हानि हो, वह-वह **'अधर्म'**, और जिस-जिस व्यवहार से उपकार हो, वह-वह **'धर्म'** कहाता है। तो लाखों के सुख-लाभकारक पशुओं का नाश करना 'अधर्म' और उनकी रक्षा से लाखों को सुख पहुँचाना 'धर्म' क्यों नहीं मानते? देखो, चोरी-जारी आदि कर्म इसलिए अधर्म हैं, कि इनसे दूसरे की हानि होती है। नहीं तो जो-जो प्रयोजन धनादि से उनके स्वामी सिद्ध करते हैं, वे ही प्रयोजन उन चोरादि के भी सिद्ध होते हैं। इसलिए यह निश्चित है कि जो-जो कर्म जगत् में हानिकारक हैं, वे-वे 'अधर्म', और जो-जो परोपकारक हैं, वे-वे 'धर्म' कहाते हैं।

जब एक आदमी की हानि करने से चोरी आदि कर्म को पाप में गिनते हो, तब गवादि पशुओं को मारके बहुत लोगों की हानि करना महापाप क्यों नहीं? देखो, मांसाहारी मनुष्यों में दया आदि उत्तम गुण होते ही नहीं, किन्तु स्वार्थवश होकर दूसरों की हानि करके अपना प्रयोजन सिद्ध करने ही में सदा [लगे] रहते हैं।

क्रमश ....

संध्या काल

अश्विन-मास, शरद-ऋतु, कलि-5121, वि. 2077
(03 सितम्बर 2020 से 1 अक्टूबर 2020)
प्रातः कालः 6 बजकर 00 मिनट से (6.00 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 30 मिनट से (6.30 P.M.)

अश्विन-मास, शरद-ऋतु, कलि-5121, वि. 2077
(02 अक्टूबर 2020 से 31 अक्टूबर 2020)
प्रातः कालः 5 बजकर 45 मिनट से (5.45 A.M.)
सांय कालः 6 बजकर 15 मिनट से (6.15 P.M.)